प्रथम अध्याय

जगदीशचंद्र माथुर :
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

"जगदीशचंद्र माथुर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व"

विषय प्रवेश -

किसी भी साहित्यकार के कृतियों का अध्ययन करने के पहले उनका व्यक्तित्व का पता लगाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात है। क्योंकि साहित्यकार के व्यक्तित्व की छाप उनके कृतियों पर पड़ती है। यह व्यक्तित्व स्वयं परंपरा, परिवेश, पैतृक्ता प्रतिभा आदि कई मिली जुली प्रतिक्रियाओं की देन है। यह व्यक्तित्व ही उस लेखक के सृजन कार्य का आधार स्रोत बनता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है क्योंकि साहित्य में परिस्थितियों का प्रतिबिंब उभरता है। लेकिन साहित्य में समाज की अभिव्यक्ति समर्थ माध्यमों से ही संभव होती है। माध्यम समर्थ होने पर ही सफलता मिलती है। अनुभव हर व्यक्ति करता है। हर व्यक्ति की परिवेश के प्रति अपनी नीजि प्रतिक्रिया होती है और उसे अभिव्यक्त करने की क्षमता साहित्यकार में रहती है। इसी कारण वह समाज का विशिष्ट चेतन प्राणी माना जाता है। जिस साहित्यकार का व्यक्तित्व जितना प्रभावी होता है उसका साहित्य उतना ही उदात्त निर्मल और निर्दोष होता है। इसलिए किसी साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन करने से पहले उसके व्यक्तित्व से परिचित होना आवश्यक है।

कविता, कहानी और उपन्यास ऐसे माध्यम हैं जिनमें रचयिता अपने अनुभव ज्यों का त्यों अभिव्यक्त कर सकता है। इन विधाओं के द्वारा एक समय में एक व्यक्ति से एक व्यक्ति तक ही संप्रेषित किया जा सकता है (साहित्यकार से पाठक) लेकिन नाटक एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा एक समूह से दूसरे समूह तक संप्रेषित होती है। इसलिए रचयिता को अनेक सीमाओं के बीच में काम करना पड़ता है। इस में पहली यह है कि रचना के माध्यम से व्यक्त होनेवाला अनुभव प्रेषक को भी अपना अनुभव प्रतीत हो। वह अनुभव जितना व्यापक होगा उतनी वह रचना भी सफल स्थापित होगी। यह तथ्य हमेशा रचयिता के व्यक्तित्व एवं परिवेश से घुलमिल जाती है।

1. व्यक्तित्व -

जगदीशचंद्र माथुर जी के व्यक्तित्व पर निम्न मुद्दों के आधार पर विचार किया है-

1.1 पारिवारिक पृष्ठभूमि -

'जगदीशचंद्र माथुर' का जन्म मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। इसलिए मध्यवर्गीय लोगों की समस्याएँ, समाज में मध्यवर्गीय लोगों का स्थान तथा समाज से उसकी उपेक्षाएँ और समाज के लिए उसका योगदान इन सारी बातों को माथुरजी ने अनुभव किया और परखा भी है। अतः उन सारी बातों को उन्होंने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

एक ललित निबंध में उन्होंने लिखा है- "सौंदर्य मेरी साधना है, किंतु पुरुषार्थ मेरी सौंदर्य साधना से भी परे लोकोत्तर सत्य है।"[1] इन शब्दों में अनजाने ही उनका व्यक्तित्व उद्घाटित होता है। सौंदर्य साधना और पुरुषार्थ दोनों भारत के गाँव की मिट्टी की देन है। उनका मध्यवर्गीय परिवार था। "सरकारी कामकाजी जिंदगी में वे ग्राम जीवन के निकट संपर्क में आए और वही उन्हें धरती के असीम सौंदर्य और लोकजीवन तथा संस्कृति की अक्षय निधि का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ।"[2] माथुर जी कला को सिद्धी मानते हैं जो प्रकृति और मानव के आंतरिक जीवन को समीप लाने की कोशिश करती है। मध्यवर्गीय परिवार की सारी विड़ंबनाएँ, व्यथाएँ, खुशियाँ उनके साहित्य में झलकती हैं।

1.2 माता-पिता -

माथुर जी के माता और पिता अपनी सामान्य परिस्थितियों में भी परिवार का अच्छा खयाल रखते थे। उनकी माता मध्यवर्गीय परिवार की आदर्श नारी का प्रतिबिंब थी। पिता कर्तव्यनिष्ठ, उदार और राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति थे। उनके पिताजी लक्ष्मीनारायण माथुर स्कूल में अध्यापक की नौकरी करते थे। वे उच्च विचारों के अध्यापक होने के कारण उनकी कर्मठता अध्ययनार्थी के मन में चेतावनी बनकर रहती थी। सामान्य जनता के प्रति उनके मन में समानता और एकात्मकता की भावना थी। दीन दलितों के प्रति दया का भाव था। वे अपने अध्ययन में विद्यार्थियों को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाते थे। अपनी युगीन प्रवृत्तियों के अनुसार वे विद्यार्थियों के मन में राष्ट्र के प्रति समर्पित होने के लिए प्रेरणा निर्माण करते थे। उनके युग में भारत देश पारतंत्र्य में था। इस तरह माथुरजी के पिताजी राष्ट्रीयता के पुजारी थे, लेकिन वे मूल रूप में सच्चे अध्यापक थे। अपने जीवन में अध्यापक बनने का उनका पक्का इरादा था। इस संबंध में अपने पिताजी के

बारे में जगदीशचंद्र माथुरजी ने उचित ही लिखा है- "बहुत-सोच समझकर उन्होने इस पथ को पकड़ा। इसीलिए पथभ्रष्ट भी नहीं हुए। इसीलिए उतनी ही राजनीति से उन्होने संबंध निभाय, जितनी शिक्षा के आदर्शों को तीव्र गति दे सकती थी उतनी ही धार्मिकता की ओर झुके, जितनी ने पीढ़ी की भावनाओं को गहराई दे सकते थे, सामाजिक जीवन में उतना ही पैठे, जितने से व्यवहार और आचार के मानदंड़ों को अपने शिष्यों के सामने रख सकते थे।"[3]

माथुर जी के साहित्य पर माता पिता का असर जरूर पड़ा है। उनके पिता आदर्शवादी शिक्षक होने के कारण उनकी इच्छा थी कि उनकी संतान और शिष्य उनसे भी अधिक योग्य और गुणवान बने। इसलिए उन्होने अपने बेटे की शिक्षा में आरंभ से ही ध्यान दिया। इसी का परिणाम है कि माथुर जी ने "दूसरी या तीसरी कक्षा में ही पाठशाला उत्सव में अभिनय में भाग लेना शुरू कर दिया। झिझक तो उन्हें कभी हुई ही नहीं। सन् 1925 में उन्होने विद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर अभिनीत किए गए बदरीनाथ भट्ट के प्रहसन 'चुंगी की उम्मीदवारी' में एक वैश्वीकरकार कन्हैया का पार्ट किया"[4] यही कारण है कि उनके प्रयोगधर्मी नाटकों के पीछे उनके पिता की प्रेरणाएँ ही थी।

1.3 माथुर जी का जन्म तथा बचपन -

जगदीशचंद्र माथुर का जन्म 16 जुलाई, 1917 में उत्तर प्रदेश 'खुर्जा के पास एक गाँव में हुआ। एक छोटे से कस्बे में इनका बचपन बीता। इसी कारण ग्रामीण समस्याओं को उन्होने बहुत नजदीक से देखा। ग्रामीण जीवन के निकट संपर्क में आने के कारण उनको प्रकृति का असीम सौंदर्य, ग्रामीण लोगों का सादगी भरा जीवन, उनकी सरलता लोकजीवन तथा हमारे संस्कृति की अक्षय निधि के प्रत्यक्ष दर्शन हुए।

1.4 संस्कार और शिक्षा-दीक्षा -

जगदीशचंद्र माथुर का जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। उनका बचपन भी ग्रामीण परिस्थितियों में बीता। इसलिए उनका संस्कार भी ग्रामीण परिस्थितियों के अनुसार हुआ। उनके बचपन में भारत स्वतंत्र नहीं हुआ था। हमारे देश पर अंग्रेजों का शासन था। उस वक्त भारत

में स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था। इसी समय माथुर स्कूली छात्र थे और इन घटनाओं का उनके जीवन पर गहरा असर पड़ा। उन्होने अपने देश की परतंत्र स्थिति को देखा और भोगा।

सन् 1933 में क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद में उन्होने प्रवेश लिया और अपनी कॉलेज की पढ़ाई पूरी की। सन् 1936 में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम्. ए. प्रथम श्रेणी में पास हुए। यह समय भारत वर्ष के इतिहास में नव जागरण का काल था। तब हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का जन्म हो चुका था। माथुरजी छायावाद की साक्षातमूर्ति सुमित्रानंदन पंत से बहुत प्रभावित हुए। जगदीशचंद्र माथुर जी के एकांकियों और संपूर्ण नाटकों में भावुकता, रोमान और कवित्व का जो प्रभाव मिलता है उसका मूल स्रोत छायावाद में निहित है।

मध्य वर्ग में उनका जन्म हुआ था। उस वर्ग के अभावों और स्वप्निल आकांक्षाओं से वे परिचित थे। इसलिए वह उस वर्ग के यथार्थ चित्रण की ओर उन्मुख हुए और यथार्थ चित्रण में सफल भी हो गये। माथुर का जन्म प्रथम विश्वयुद्ध के (1914-1919) दरमियान हुआ तथा उनका बचपन और कौमार्य बीतते ही दूसरा विश्वयुद्ध (1939-1945) शुरू हुआ। इन दो विश्वयुद्धों का उन पर प्रभाव पड़ा। इसी कारण उनके तीनों नाटकों में युद्ध के प्रसंग दिखाई देते हैं। उनके अनेक एकांकियों में युद्ध का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

माथुरजी जिस वक्त सरकारी नौकरी में आए थे उन दिनों भारत वर्ष में अंग्रेजी शासन था। अंग्रेजों के शोषण और दमन नीति से जनता त्रस्त हो गई थी। अंग्रेजों के शोषण को उन्होने अपने आँखों से देखा और उनका मन अपने देश तथा देशवासियों की पीड़ा को महसूस करने लगा। उस वक्त उन्होने सोई हुई अंधकार में भटकनेवाली जनता को सचेत किया। उन्हें जागृत करके अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए आह्वान किया। उनकी कृतियाँ 'भोर का तारा', 'विजय की बेला' तथा 'कोणार्क' में यही बातें देखने को मिलती हैं। शासन तथा शोषण के विरूद्ध उन्होने अपने पात्रों के माध्यम से आजादी की लड़ाई में अपना सहयोग दिया है।

नौकरी करते समय उन्हें महसूस हुआ कि वे भी शोषकों के वर्ग में शामिल हुए हैं। उनका मन अपने देश और देशवासियों की पीड़ी को महसूस करने लगा। इसकी प्रतिक्रिया उन्होने अपने 'भोर का तारा' (1937) एकांकी में व्यक्त की है। जिन में हूण आक्रांता तोरमण के विरूद्ध

जनमत बनाने के लिए उज्जयिनी का महाकवि शेखर अपने श्रृंगार-काव्यों की होली जलाकर देश और देशवासियों को आक्रांता के विरूद्ध एकजुट करने का नेतृत्व ग्रहण करता है।

1.5 घरेलु वातावरण -

मध्य वर्ग में उनका जन्म हुआ। इसलिए उस वर्ग के अभावों और स्वप्निल आकांक्षाओं से वह परिचित थे। उनका मन इसलिए मध्य वर्ग के यथार्थ चित्रण की ओर उन्मुक्त हुआ। उनके पिता कर्तव्यनिष्ठ, उदार, राष्ट्रीय विचारों के वाहक थे। उनकी माता मध्यवर्गीय परिवार की एक आदर्श भारतीय नारी थी। इस खुले घरेलु वातावरण से ही माथुरजी ने सब कुछ सीखा था। सामान्य, दीन-दलित और पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति से व्यवहार करने का सामान्य ज्ञान उन्हें अपने घरेलू वातावरण से मिला। देश के तत्कालीन परतंत्र स्थिति के बारे में चर्चाएँ उन्होने सुनी थी। इसी कारण उनके मन में छुपी हुई विद्रोह की भावनाएँ जागृत हो उठी। वह अत्याचार और अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रेरित हो उठे। देश के प्रति आत्मसमर्पण की भावनाएँ उनके मन में जागृत हो उठी थी। उनके पिताजी के स्कूल में शाहजहाँ नाटक का प्रयोग होनेवापा था, लेकिन उस नाटक से मुसलमान नाराज हुए थे। अतः उनके पिताजी द्वारा उस नाटक के प्रदर्शन को रोक दिया गया। इस घटना का भी माथुरजी के मन पर अच्छा असर पड़ा था। उन्होने स्वयं लिखा है- ''इतिहास में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनकी चर्चा अनुसंधान और अध्ययन के स्तर पर ही होनी चाहिए, प्रदर्शन के द्वारा नहीं। प्रदर्शन ऐसे ही पहलुओं का हो, जिनके द्वारा आधुनिक समाज का कल्याण हो और फिर भारतीय इतिहास में सांप्रदायिकता की मनोवृत्ति के विकास का दिग्दर्शन उन्होने हम दोनों को कराया। भारतीय इतिहास की वे झाँकियाँ मेरी और शायद नरेंद्र जी की भी विचारधारा को स्थिर करने में सहायक हुई।''[5] जीवन और जगत् के प्रति उनमें जैसा रागात्मक संबंध है वह उनके साहित्य में भी उभरता है। जन साधारण के प्रति उनके मन में लगाव है। इस लगाव के पीछे उनके पिता का ही हाथ है। पिता से ही उन्होने जीवन के संकीर्णताओं को सामना करने की कला सीखी। पिता की देख-रेख में उन्होने मन की खिड़कियों को खोला।

1.6 कला की रुचि -

माथुर जी के बचपन का समय भारत में नवजागरण का काल था। उस वक्त हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का जन्म हो चुका था। समाज और दर्शन में व्यक्ति का महत्व स्थापित हो चुका था और आत्माभिव्यक्ति के लिए माथुरजी का मन आकुल होने लगा था। उनके व्यक्तिवादी भावुक मन में यथार्थ की पीड़ा और काल्पनिक भविष्य के सुनहरे सपने भी साकार हो उठे। माथुरजी के मन में कला के प्रति रुचि निर्माण करनेवालों में पंतजी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। पंतजी की छायावादी कविताएँ पढ़कर, गुनगुनाकर युवक स्वतंत्रता के सपने सजाते थे क्योंकि उनमें आज़ादी की उड़ानें थी, अतः माथुरजी के मन में भी इन्हीं कविताओं के पढ़कर रुचि निर्माण हुई थी, उनका कथन है कि "उन सपनों के विधाता बने मेरे लिए पंतजी यानी बीमारी के दिनों में मैंने केवल उनकी रचनाओं को पढ़ डाला। अकेलेपन को दूर करने के लिए उनकी पंक्तियों को गुनगुनाता रहा बल्कि तकिए के नीचे कागज और पेन्सिल रखकर छुपे छुपे तुकबंदियाँ भी करने लगा।"[6] इस प्रकार माथुर जी में कला के प्रति रुचि निर्माण करने में पंतजी का योगदान सर्वोपरी है।

1.7 साहित्य क्षेत्र में पदार्पण -

माथुरजी के जीवनवृत्त में हमने देखा है कि उनका बाल्यकाल और यौनवनकाल अंग्रेजियों के परतंत्र में बीता था। उन लोगों का आतंक माथुरजी ने स्वयं भोगा था। इसी कारण उनका मन अपना देश तथा देशवासियों की पीड़ा को महसूस कर रहा था। उसी आतंक का चित्रण उन्होने अपने साहित्यिक कृतियों में खींचने का प्रयत्न किया। माथुरजी ने 1937 में 'भोर का तारा' एकांकी लिखकर साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया जिसमें हूण आक्रांत तोरमण के विरूद्ध जनमत उद्वेलित करने के लिए उज्जयिनी का महाकवि शेखर अपनी श्रृंगारपूर्ण रचना काव्य-संग्रह को जलाकर देश और देशवासियों को जागृत करने का नेतृत्व ग्रहण करता है। माथुरजी का साहित्यिक नेतृत्व इधर से शुरू होते हैं। परतंत्रता के विरूद्ध जनता को जाग्रत करने के लिए माथुर जी ने अपने साहित्य सृष्टियों का उपयोग किया जो उन्हें लिखना था। वह सब कुछ उन्होंने जाना था, पहचाना था, देखा था और परखा था। अपने आंतरिक विद्रोह को स्पष्ट करने के लिए उन्होने साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया।

माथुरजी भारतीय संस्कृति के अनुयायी हैं। भारतीय इतिहास पर उन्हें अटूट विश्वास है। माथुरजी ने भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण अनेक घटनाओं को नाटकीय रूप दिया है। लेकिन उन्होने भारतीय संस्कृति का अनुकरण नहीं किया है। वे समाज में फैले हुए अंधविश्वासों, रुढ़ियों-असमानता आदि से दुःखी दिखाई देते हैं। इसी कारण उनके सभी नाटकों में प्रबुद्ध कलाकार के संयम के साथ चित्रण किया है। उन्होने मानव-स्वाभिमान को चोट पहुँचानेवाली अमानवीय जर्जर मान्यताओं और लोकाचार पर निर्मम प्रहार किया है।

1.8 साहित्य क्षेत्र -

माथुर जी का साहित्यिक क्षेत्र भी असीम है। माथुर जी के साहित्यिक क्षेत्र की परंपरा लंबी और सदृढ़ है। उन्होने अपने अंदर सोये हुए पुरुषार्थ को जगाने के लिए साहित्यिक विधा का आश्रय लिया। उसमें नाट्य विधा और एकांकी विधा प्रमुख है। उन्होने अपने नाट्य लेखन के लिए इतिहास और पुराण का आश्रय लिया, उसे सिर्फ सहारा कहना ही ठीक होगा क्योंकि उन्होने जो स्पष्ट करना था वह समकालीन स्थिति का एक अंश है। उन्होने उन सहारों के द्वारा वर्तमानकालीन समस्या का चित्रण किया। माथुर जी का साहित्य क्षेत्र असीम रूप में है मगर साहित्यिक विधाओं की दृष्टि से सीमित ही है। माथुरजी ने अपनी रचनाओं के लिए साहित्यिक विधाओं में से नाटक, एकांकी, निबंध, रेखाचित्र आदि को चुना। अलग-अलग पत्रिकाओं में उनके कुछ लेख समय समय पर प्रकाशित हुए थे।

माथुर जी ने अपने जीवन में यथार्थ की चुनौती को स्वीकार किया है। उन्होने लिखा है- ''मैं जीवन की असलियत को जानता हूँ। मेरे पैर धरती पर जमे हैं। मैंने दुनिया देखी है। मैंने किताबों पढ़ी हैं, अध्ययन किया है। मैं जानता हूँ कि जिंदगी में पीड़ा है, ओछापन है, स्वार्थ है, घोर पार्थिवता है। तितली, तुम्हारी इन क्यारियों के परे एक और भी तो दुनिया है, गरीबों की दुनिया, पूँजिपतियों के शिकार मजलूमों की दुनिया, भूखे किसानों की दुनिया।''[7]

1.9 साहित्यिक व्यक्तित्व -

किसी साहित्यकार के पीछे उनका साहित्यिक व्यक्तित्व होता है। रचनाकार का आंतरिक स्रोत उनका व्यक्तित्व ही है। आंतरिक और बाह्य स्वरूप का प्रभाव उनके साहित्य पर

पड़ता है जो स्वयं परंपरा, परिवेश, प्रतिभा, संघर्ष शक्ति आदि कई परिस्थितियों से प्रतिक्रियाओं की देन हैं। साहित्यकार के साहित्य के लिए यही व्यक्तित्व बड़ा आधार बनता है। कभी-कभी साहित्यकार के निजी व्यक्तित्व में साहित्यिक व्यक्तित्व को ढूँढ़ा जा सकता है। इनका प्रमाण स्वयं माथुरजी के शब्दों में मिलता है- ''मन में भरी हुई अनजानी गाँठे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति शैली निर्धारित करती है।''[8] मगर कभी-कभी निजी व्यक्तित्व में साहित्यिक व्यक्तित्व ढूँढ़ना खतरे से खाली नहीं होता। किंतु माथुरजी के व्यक्तित्व को उस ढंग से ढूँढ़ना खतरा नहीं है। क्योंकि माथुरजी ने अपना साहित्य भोगे हुए यथार्थ से ही निर्माण किया है। उनके हर एक साहित्य में उनका निजी व्यक्ति झलक उठता है।

माथुर जी प्रयोगवादी कलाकार हैं। उन्होने अपने नाट्य साहित्य में नए-नए प्रयोग किए हैं। यह प्रवृत्ति भी उनको पैतृक रूप में मिली क्योंकि उनके पिता शैक्षणिक एवं सामाजिक क्षेत्र में आजीवन नए-नए सफल प्रयोग करते रहे हैं। माथुर के अपने शब्दों में यह बात परिलक्षित होती है- ''जिंदगी-भर ऐसे प्रयोगों में ही उन्होने वह अमृत रस पाया जो काया के कष्टों और संघर्ष की आंधियों में भी उन्हें उल्लास देता था।''[9]

2. कृतित्व -

जगदीशचंद्र माथुर का कृतित्व देखते हुए उसे हम दो भागों में बाँट सकते हैं-

1. कार्यक्षेत्र 2. साहित्य क्षेत्र

माथुर का साहित्य क्षेत्र जितना विशाल है, उसी तरह उनका कार्यक्षेत्र भी बहुत बड़ा है।

2.1 कार्यक्षेत्र -

जगदीशचंद्र माथुर नौकरी करते वक्त किसी एक जगह पर ज्यादा दिनों तक नहीं टिक सके। सन् 1936 में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम्. ए. की उपाधि हासिल करने के पश्चात् 1941 में सरकार की सेवा में आए। वे इंडियन सिविल सर्व्हिस के अंतर्गत बिहार में शिक्षा-सचिव के रूप में नियुक्त किए गए। चार बरस के बाद सन् 1945 से 1946 तक वे 'सब डिविजनल ऑफिसर' बने। सन् 1949 में वे पटना सेक्रेटरियट में पदाधिकारी के रूप में रहे। सन् 1951 से 1955 तक वे पटना में बिहार सरकार के शिक्षा-सचिव के रूप में कार्यरत रहे। सन् 1953 से

1959 तक संगीत नाटक अकादमी के वे स्वयं सदस्य बने। सन् 1955 से 1962 तक नई दिल्ली में आकाशवाणी के महानिर्देशक पद पर वे नियुक्त किए गए। उस वक्त उनका संबंध मराठी के लब्ध प्रतिष्ठित नाटककार मामा वरेरकर के साथ आया। मामा वरेरकर के अनेक गुणों का प्रभाव उनके मन पर पड़ा। जिसका चित्रण उन्होंने अपने 'सदाबहार साया' संस्मरण में किया है।

अनुसंधान के क्षेत्र में भी आपकी गहरी रुचि थी। सन् 1963 से 1964 तक हार्वर्ड विश्वविद्यालय में वे विजिटिंग फेलो के रूप में अनुसंधान का कार्य करते रहे। सन् 1960 से लेकर 1962 तक 'नॅशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' की कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कार्य किया।

सन् 1964 में कुछ दिनों के लिए कृषि मंत्रालय के अतिरिक्त सचिव बने। उस समय उन्होंने कृषि समस्याओं को देखा और उन्हीं समस्याओं को उन्होंने 'पहला राजा' नाटक में चित्रित किया है। सन् 1970 में गृह मंत्रालय में हिंदी सलाहकार के रूप में निर्वाचित किए गए। इसके बाद सन् 1973 में बैंकाक में प्रतिनियोजित के रूप में कार्यरत रहे। 14 मई, 1978 में 'राम मनोहर लोहिया' अस्पताल, दिल्ली में उनका निधन हुआ।

2.2 साहित्य क्षेत्र –

डॉ. जगदीशचंद्र माथुर जी का साहित्यिक जीवन सन् 1929 में प्रारंभ हुआ। तब उनकी आयु बारह वर्ष की थी। सन् 1929 में 'बाल सखा' के लिए 'मुर्खेश्वर राजा' नामक प्रहसन लिखा था। इसी वर्ष उन्होंने 'लवकुश' नाटक की रचना की। साहित्यिक दृष्टि से यह नाटक महत्त्वहीन था परंतु माथुर का यह प्रथम प्रयास था।

माथुर एक नाटककार, एकांकीकार तथा संस्मरणकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। लेकिन उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने अधिक एकांकी और नाटक नहीं लिखे लेकिन अपने एक दो नाटक से ही हिंदी जगत् में ख्याति प्राप्त की। माथुर जी की अधिकांश एकांकी सामाजिक कथ्य से संबंध है।

'मुर्खेश्वर राजा' नामक प्रहसन उनका प्रथम प्रयास था। चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने एक एकांकी लिखी। वह शिवाजी पर आधारित है। उसकी रचना द्विजेंद्रलाल राय की

शैली पर की गई थी। इस एकांकी का एक अंश 'सेवा' में सन् 1930 में प्रकाशित हुआ था। इसमें टैकनीक की अपरिपक्वता थी। फिर भी पाश्चात्य नाट्य शैली के गुण इस में स्पष्ट दिखाई देते थे। 14 वर्ष की आयु में माथुर ने प्रथम रचना 'हेनरी फोर्ड का जीवन चरित्र' लिखी। प्रयाग के प्रेसवालों को उन्होंने यह रचना भेजी। प्रेसवालों ने चालीस रुपये के मनिआर्डर के साथ यह कहा- "महोदय, आपकी पुस्तक किशोर और युवकों के लिए उपादेय है। हम उसे अपनी सिरीज में प्रकाशित करेंगे।"[10] इस तरह भी इन्हें साहित्य रचना की प्रेरणा मिली। हिंदी प्रेसवालों ने इन्हें लेखकों की पंक्ति में ला बिठाया।

2.2.1 एकांकी -

जगदीशचंद्र माथुर ने 'मेरी बांसुरी' नामक पहली एकांकी संग्रह लिखी। उनके तीन एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए हैं -

भोर का तारा -

'भोर का तारा' संग्रह में पाँच एकांकी हैं- 1. भोर का तारा, 2. रीढ़ की हड्डी, 3. कलिंग विजय, 4. मकड़ी का जाला, 5. खंड़हर।

1. भोर का तारा -

यह गुप्तकालीन भारत की पृष्ठभूमि लेकर लिखी गई एकांकी है। समाज के हित में व्यक्ति का सर्वस्व समर्पण इस एकांकी का मूल स्वर है। शेखर कवि है, छाया उसकी प्रेयसी। छाया राजा को शेखर की कविताएँ सुनाती है। राजा प्रसन्न होकर शेखर को राजकवि बनाता है। शेखर उन दिनों भोर का तारा शीर्षक पर महाकाव्य रच रहा है। तब तक्षशिला पर हूणों का आक्रमण होता है। उसका परममित्र देवदत्त मातृभूमि की रक्षा करते हुए मारा जाता है। शेखर कवि है लेकिन वह कलम छोड़कर तलवार स्वीकार करता है। क्योंकि उस वक्त मातृभूमि की रक्षा के लिए कलम की नहीं तलवार की जरूरत थी।

2. कलिंग विजय -

इस एकांकी में लेखक ने प्रेम और वैराग्य के द्वंद्व का चित्रण इतिहास की इस सुप्रसिद्ध घटना के द्वारा किया है। इस में मानवीय स्वभाव का निरूपण भी किया है। रेखा के

प्रेम में डूबकर सम्राट अशोक उचित-अनुचित का विवेकपूर्ण निर्णय लेने में असमर्थ होता है। अपने भाई को वह तक्षशिला छोड़ने के लिए कहता है। कलिंग पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक लोगों को मारना पड़ता है। लेकिन इस नरसंहार के बाद वह स्वयं इस पर अवलोकन करते हैं और उसको अफसोस लगता है। कलिंग की राजकुमारी अपने राज्य की रक्षा करना अपनी जैसी स्त्रियों को उत्तरदायी मानती है। कलिंग की राजकुमारी अशोक को युद्‌ध की निरर्थकता को समझाती है। सब कुछ खोकर राजकुमारी भिक्षुणी बनने के लिए प्रेरित होती है। अशोक भी राजकुमारी के सिखाये मार्ग पर चलने का निर्णय ले लेता है।

3. रीढ़ की हड्डी -

शरीर को सुदृढ़ और सुडौल बनाए रखने के लिए रीढ़ की हड्डी महत्त्वपूर्ण है। जिसके बिना जीव की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसीलिए यह मुहावरा बन गया है। माथुर जी इस नाटक में लड़की दिखाए जाने की प्रथा पर चोट की है। वहीं स्त्रियों के मानवाधिकार की वकालत भी करते हैं। रीढ़ के बिना शरीर लिजलिजा और थुलथुला हो सकता है। चरित्र के बिना पौरुष की भी वहीं गती होगी। चरित्र पौरुष की रीढ़ है।

4. मकड़ी का जाला -

इस एकांकी में एक धनी व्यवसाय में निपुण, अनुभवी और संवेदनशून्य व्यक्ति का जीवन चरित्र प्रस्तुत किया गया है। वह हमेशा पैसा कमाने में मग्न रहता है। खुद एक मशीन की तरह काम करता रहता है। संवेदनशीलता सूखती जाती है। उसका हृदय क्रमशः शुष्क और नीरस होता जाता है। वह धनलोलुप अधिक दिखता है और आदमी कम। आज के युग में पैसा महत्त्वपूर्ण है पर उसे ही सब कुछ समझ बैठना मानवता से भटक जाना है।

5. खंड़हर -

चलते फिरते मानव भी टूटे हुए सपनों के खंड़हर अपने में समेटे होते हैं। बाहरी तौर पर भरा-पूरा आदमी दिखता हो पर संवेदन शून्य हो गया उसका हृदय भावात्मक दृष्टि से खंड़हर हो चुका होता है। इस एकांकी के द्‌वारा जीवन के कठोर यथार्थ की ओर संकेत किया है।

ब) ओ मेरे सपने -

प्रस्तुत एकांकी संग्रह में पाँच एकांकी संकलित हैं - 1. घोंसले, 2. खिड़की की राह, 3. कबूतर खाना, 4. भाषण, 5. ओ मेरे सपने आदि।

उपर्युक्त सभी एकांकी यथार्थवादी और सामाजिक एकांकी हैं। इन सभी एकांकियों में समाज का प्रतिबिंब दिखाई देता है। मध्यवर्गीय परिवार में जीवन जीनेवाले आदमी की सभी समस्याएँ इन एकांकियों में देखने को मिलती हैं।

1. ओ मेरे सपने -

आज की सिनेमा युवा पीढ़ी पर भ्रामक सपनों में जीने की आदत डालने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हर युवक फिल्मी हीरो का अनुकरण करता है। हीरो बनने के सपने देखता है, लेकिन सपना कभी यथार्थ नहीं होता। फिल्में देखने के लिए घर से पैसा लुटाते हैं। अपना महत्त्वपूर्ण समय फिल्मों की बातें करके और सिनेमा देख के बर्बाद करते हैं। प्रस्तुत एकांकी ऐसे ही फिल्मी हीरो का अनुकरण करनेवाले तीन युवकों के स्वप्नभंग की कहानी है।

2. खिड़की की राह -

प्रस्तुत एकांकी के द्वारा लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि नारी प्रेम का महल धन की नींव पर नहीं बल्कि गुण की नींव पर खड़ा होता है।

3. कबूतर खाना -

इस एकांकी में दफ्तर की व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। दफ्तर में जाकर मनुष्य फयलों में व्यस्त हो जाता है। घर, परिवार के बारे में सोचने के लिए उन्हें बिलकुल वक्त नहीं मिलता। सारी जिंदगी दफ्तर में फयलों को देखकर बिताते हैं।

4. घोंसले -

इस एकांकी में माथुर जी यह बताना चाहते हैं कि परिवार नियोजन सुखी दांपत्य के लिए आवश्यक है। माथुर जी का कहना है कि यह एकांकी उन्होने तब लिखी थी जब परिवार नियोजन की चर्चा भी नहीं होती थी, यानी 1948 में।

5. भाषण -

माथुर जी के इस एकांकी में हास्य का पुट है। प्रस्तुत एकांकी नौकरशाही के जीवन व्यवहार पर प्रकाश डालने में समर्थ है।

क) मेरे श्रेष्ठ एकांकी -

माथुर जी का यह तीसरा एकांकी संग्रह है, लेकिन सबसे पहले प्रकाशित हुआ है। इसमें कुलमिलकर आठ एकांकी संकलित हैं- 1. बंदी, 2. घोंसले, 3. खंड़हर, 4. ओ मेरे सपने, 5. भोर का तारा, 6. भाषण, 7. विज्रय की बेला, 8. रीढ़ की हड्ड़ी।

प्रस्तुत एकांकी संग्रह में दो ही एकांकी नए हैं। 1. विजय की बेला और 2. बंदी।

1. विजय की बेला -

यह दो दृश्यों की एकांकी है। इसमें बिहार के पराक्रमी राजा कुंवरसिंह के जीवन की एक घटना को लिया गया है। 1857 के गदर में अंग्रेज सिपाही के पिस्तोल की गोली उनके हाथ पर लगी। कुंवरसिंह ने उस हाथ को अपवित्र मानकर काट कर गंगा में प्रवाहित कर दिया। कुंवरसिंह उतना अभिमानी था। उनको अपने राज्य पर गर्व था।

2. बंदी -

इस एकांकी में यह बताया गया है कि अधिकतर लोग अपने जीवन के प्रति एक धारणा बना लेते हैं उन धारणाओं में पूरा जीवन जीते हैं। लेखक ने बताया है कि इसका मतलब है हम सभी अपने-अपने बंदी हैं। इसके साथ-साथ गाँव और शहर के संस्कार में कितना मौलिक अंतर होता है यह भी स्पष्ट किया है।

2.2.2 लघु नाटक -

जगदीशचंद्र माथुर एक प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। उन्होंने 'कुंवरसिंह की टेक' और 'गगनसवारी' नामक दो लघु नाटक लिखे हैं।

1. कुंवरसिंह की टेक -

यह एक ऐतिहासिक लघु नाटक है। जिसमें राजपूती जीवन प्रस्तुत किया है। राजपूत लोग अपनी तलवार की रक्षा के लिए तथा मातृभूमि की रक्षा के लिए सब अर्पण कर देते हैं।

सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के महान योद्धा राजपूत कुल-शिरोमणि कुंवरसिंह प्रस्तुत नाटक के नायक हैं। उनकी वीरता, साहस, त्याग एवं देश-प्रेम का अद्भुत चित्रण इस नाटक में हुआ है। इसका आरंभ बच्चों के खेल की तरह है। इसको माथुरजी ने स्वयं इसकी भूमिका में स्पष्ट किया है- ''कठपुतलियों के कलाकार सागर के लिए पिछले साल मैंने एक कहानी उसी की शैली में तैयार की। कठपुतलियाँ सागर ने बनाई, गीत और वार्ता मैंने।''[11]

2. गगन सवारी -

यह एक कठपुतली नाटक है। यह लघु नाटक राष्ट्रीय एकता का चित्र प्रस्तुत करता है। एक मामूली जुलाहे के नौकर के माध्यम से। वह सपने में घोड़े पे सवार होता है और महाराज बनने के सपने संजोता है। लेखक ने इस नाटक के जरिए समाज पर करारी चोट की है। व्यक्ति सब कुछ मिलने पर भी निरंतर अधिक पाने की इच्छा रखते हैं। इसमें विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया है।

2.2.3 नाटक साहित्य -

'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा' ये माथुर के मौलिक नाटक हैं। इन तीनों नाटकों में ऐतिहासिकता और पौराणिकता दिखाई देती है।

रामचरित मानस पर आधारित लीला नाट्य 'दशरथनंदन' और 'रघुकुलरीति' उनके अंतिम दिनों की नाट्य रचनाएँ हैं।

1. कोणार्क -

राजा नरसिंह देव के आज्ञानुसार बारह सौ शिल्पी कोणार्क मंदिर के निर्माण में लगे हुए हैं। मंदिर के ऊपर का कलश स्थापित न होने के कारण प्रधान शिल्पी विशु चिंतित है। उसी वक्त धर्मपद नाम के युवा शिल्पी आते हैं और कलश की स्थापना करते हैं। कलश स्थापन का पुरस्कार धर्मपद विशु से माँगता है। वह पुरस्कार है एक दिन के लिए प्रधान शिल्पी पद का स्थान। जब महाराज आते हैं तब धर्मपद उनके नाम पर शिल्पियों पर होनेवाले अत्याचारों की शिकायत करता है। इस अत्याचार के बारे में महाराज को पता नहीं था। यह राज चालुक्य का काम था। उसी समय नरसिंहदेव की अनभिज्ञता और निर्दोषिता सिद्ध होती है और अत्याचारी चालुक्य का

भंड़ा फूट जाता है। चालुक्य केवल मनमानी करता जा रहा है। शिल्पियों के प्रति वह एक विचित्र प्रतिशोधात्मक नीति अपनाता है। उसने यह भी घोषित किया था कि अगर एक सप्ताह के अंतर कलश स्थापित नहीं हुआ तो सभी शिल्पियों के हाथ काट लिए जाएँगे।

शिल्पियों पर किए गए अत्याचार और कष्ट की बात महाराज को बोलने के लिए महाशिल्पी और अन्य लोग इसलिए भयभीत थे कि चालुक्य सारे आदेश महाराज के नाम पे कर रहा था। इसलिए सब लोगों ने यह समझ रखा था कि सभी अत्याचार महाराज की सहमति से कर रहा है। लेकिन तुरंत पता चलता है कि चालुक्य की महत्त्वाकांक्षा का कोई अंत नहीं था। उसने महामात्य के साथ कूटनीति अपनायी थी। मंदिर की ओर महाराज के साथ आते वक्त वह रथ की घूरी टूट जाने का बहाना करता है और महाराज आगे जाते ही पीछे से अपने सेना को ले के मंदिर को चारों ओर से घेर लेता है। शैवालिक को अपने दूत बनाकर नरसिंहदेव को अधीनता स्वीकार करने का संदेश देता है। सब को पता चलता है कि नरसिंह देव निर्दोषी है सब के पीछे चालुक्य का षड़यंत्र है। महाराज नरसिंह देव ने भी स्थिति की भयंकरता को समझकर प्रतिशोध करने की तैयारियाँ शुरू की। इस प्रकार कोणार्क एक दुर्ग बन गया और शिल्पी गण सैनिक बन गये। धर्मपद के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर नरसिंहदेव ने उसको दुर्गपति बना दिया। धर्मपद ने चालुक्य के दूत को मुँहतोड़ जवाब दिया और शिल्पियों को प्रतिशोध करने के लिए तैयार किया। सभी लोग चालुक्य को रोकने की तैयारी में बैठे।

धर्मपद के शिल्पी सैनिकों ने चालुक्य को रोका और रात के अंधेरे का लाभ उठाकर नरसिंह देव पुरी की ओर चले गए। धर्मपद चिंतित है कि रात्री के युद्धविराम का सामान्य नियम तोड़कर चालाक चालुक्य कुछ भी कर सकता है। युद्ध में घायल धर्मपद मूर्च्छित हो जाते हैं तब धर्मपद के गले से हाथी दात का हार गिर पड़ा था। जिसे सौम्यश्री ने देखा। उसको मालूम हो गया कि यह विशु का पुत्र है। उसने विशु को दिखाया और विशु को याद आया कि यह वही कामदेव की मूर्ति का हार है जिसे उसने अपनी स्मृति और धरोहर के रूप में यौवन की प्रेयसी को दिया था।

सौम्य श्रीदत्त सामने विशु धर्मपद को हार के बारे में पूछते हैं और पुष्टि करते हैं कि धर्मपद उन्हीं का पुत्र है। इसी वक्त सूचना मिलती है कि रात के अंधेरे का लाभ उठाकर दक्षिण

प्राचीर के अंश में शत्रु-दल ने एक छोटा-सा रास्ता बनाकर मंदिर के अंदर पहुँच गया है। धर्मपद सुरक्षात्मक व्यवस्था हेतु जाना चाहता है। थके और घायल सैनिक शिल्पी चालुक्य की प्रशिक्षित सेना के सामने टिक नहीं पाएँगे यह धर्मपद समझ चुका था। विशु को मालूम था कि नरसिंहदेव की सहायता सेना आने के पहले कोणार्क मंदिर पापियों के हाथ में चला जाएगा। धर्मपद की मृत्यु होने से क्रोधित विशु मंदिर के चुंबक को तोड़ने लगते हैं। कोणार्क मंदिर को चालुक्य के हाथ से बचाने के लिए विशु मंदिर को ध्वस्त करता है।

2. *शारदीया* –

माथुरजी का दूसरा नाटक शारदीया भी ऐतिहासिक कृति है। नाटक के दो पात्र नरसिंहराव और बायजाबाई बचपन के प्रेमी हैं। दो वर्ष पहले नरसिंह देव धन कमाने के लिए चला गया था। अपनी बेटी और नरसिंहदेव के प्रेम को समझकर बायजाबाई की माँ ने वादा किया था कि गृहस्थी निभाने की पूँजी जमा कर आने के बाद शादी करके दूँगी। आने के बाद वह बायजाबाई को मिलने गया। तब बायजाबाई के पिता सखाराम घाटगे की किलेदारी चली जाने के कारण पूना में नाना फडणवीस के यहाँ नौकरी कर रहे हैं। दो वर्ष के बाद जब नरसिंह देव बायजा बाई को माँ की बचपन की याद दिलाता है। बायजाबाई माँ की वचन की याद पिता को भी दिलाती है। सखाराम घाटगे बायजाबाई और नरसिंहराव के प्रेम को नकार देता है तथा नरसिंहदेव के प्रति अपनी नफरत भी प्रकट करता है।

नरसिंहराव के मन में यह कामना थी कि मराठे एवं निजाम के बीच के संभावित आगामी युद्ध में वह सच्चे मराठा वीर सैनिक की तरह भाग लेकर धन कमाने के बाद यश प्राप्त करेगा, उसके बाद ही आकर बायजा से शादी करूँगा। नरसिंह राव दो वर्षों तक निजाम हैदराबाद के दरबार में सिंधिया के सरदार काले के साथ रहा। हैदराबाद में कुशल कारिगरों की तैयार की गई साड़ी बंबई में जाकर बेचना उसका काम था। इसके साथ उन्होने और एक काम भी सीखा वह था अंगूठे के नाखून में छेद बनाकर पाँच तोले वजन की पाँच गज की साड़ी बुनने की कला। बायजाबाई अपनी ऊँगली चीरकर नरसिंह को विजय तिलक लगाती है। नरसिंहदेव युद्ध के बाद एक विशेष तिथि को पहनी जाने को एक विशेष वस्त्र भेंट देने का वादा करके बायजा से विदा लेता

है। दोनों को उम्मीद दी की शारदीया की दूर तक फैली वह चाँदनी उनके उज्वल, शीतल और भविष्य का प्रतीक बनेगी। लेकिन नरसिंह और बायजाबाई के प्रेम को और कई मुश्किलों से गुजरना पड़ता है। नरहसिंहराव वापस जाने के बाद सखाराम आते हैं और वह बेटी को बताता है कि कागल की किल्लेदारी वापस मिलने का रास्ता खुल गया है। वह बताता है कि सर्जेराव घाटगे के रूप में उसकी सिंधिया महाराज तक पहुँच हो गई है। सिर्फ किल्लेदारी नहीं और बहुत कुछ पाया जा सकेगा। सर्जेराव घाटगे ने बेटी का भविष्य तय कर लिया था। नरसिंहदेव को बेटी के रास्ते से हटाने के लिए उन्होने पद्धतियाँ बनाई थी। सर्जेराव घाटगे कूटनीति अपनाता है और नरसिंहदेव को कूटनीति में शिकार बनाता है। सिंधिया महाराज को कठपुतली बना के नरसिंहदेव को राष्ट्रद्रोह के अपराध में बंधी बनाया जाता है। सर्जेराव बायजाबाई को बताता है कि नरसिंह मर चुका है।

शराब के नशे में महाराज की ओर से दीवान पद के आज्ञा पत्र पर घाटगे दस्तखत करवा लेता है। महाराज और बायजाबाई की शादी तय होती है। शादी के बाद बंधियों को मिलने के लिए बायजाबाई जाती है तब नरसिंहराव के साथ मुलाकात होती है। भेट के दरमियान घाटगे का सारा षड़यंत्र बायजा को मालूम होता है। वह नरसिंह को इससे छुड़ाना चाहती है, उस समय नरसिंह पंचतोलिया साड़ी भेंट देता है। वह साड़ी उन्होने बायजा के लिए जेल में बैठकर बनायी थी। दर्द से टूटी बिखरी बायजा आखिरी बार नरसिंह को साथ चलने के लिए कहती है मगर नरसिंह उसी कालकोठरी को अपना जीवन मानकर वहीं रहता है।

क) पहला राजा -

समकालीनता का प्रतीकाख्यान पौराणिक नाटक है 'पहला राजा'। राजा वेन के मृत शरीर को माँ सुनीथा ने विशेष लेप देकर अट्ठाईस दिनों तक सुरक्षित रखा है। वेन के शरीर पर कुशा की रस्सी लिपटी हुई है। मृत्यु के देवताओं को वह प्रार्थना करती है कि मेरे पुत्र का प्राण वापस करो। चमत्कारी लेपन से शरीर तो सुरक्षित है। अट्ठाईस दिनों के बाद वेन के जीवित न होने के कारण क्रुध हो कर सुनीथा अपनी दासी को आदेश देती है कि वेन के गले की कुशा को तलहटी में ले जाकर रोप दे ताकि ब्रह्मावर्त की धरती पर अभिशापों का जंगल फैल जाये। मुनियों को उनके किये पर फल भोगना चाहिए जिन्होने कुशा का रस्सी में हत्यारे मंत्र फूँक थे।

मुनिगण के बातचीत से पता चलता है कि, वेन अत्याचारी राजा थे। इसलिए मुनियों ने उसको मृत्यु का अभिशाप दे दिया। लेकिन वेन के मृत्यु के बाद उनके भय से छिपे हुए दस्यु गण आश्रमों पर हमला करना शुरू करते हैं। एक शासक नियुक्त किये बिना राज्य व्यवस्था ठीक नहीं हो सकती, इसलिए मुनिगण राजमाता सुनिथा को मिलने आए हैं।

मुनिगण बताते हैं कि मंत्रबल से वेन के शरीर का मंथन करके उनमें से उत्तराधिकारी शासक का आविर्भाव किया जाए। मुनिगण जंघा का मंथन करता है और 'कवष' को जंघापुत्र घोषित करते हैं और भुजा का मंथन करके पृथु को भुजापुत्र घोषित करते हैं, कवष को वेन का पाप अंश और पृथु को वेन का पुण्य अंश बताकर पृथु को पहला राजा घोषित करते हैं। गर्ग पुत्री अर्चना को रानी के रूप में अभिषिक्त किया जाता है।

वेन की मृत्यु का समाचार सुनकर अंग ने कवष को सुनीथा के पास भेजा और सुरक्षित पहूँचाने का दायित्व पृथु को दिया। अंग के आश्रम में पृथु और कवष की एक मित्र थी उर्वी। उर्वी को दोनों से अथाह प्रेम था। पृथु कवष को साथ रखना चाहता है और ऋषियों को अपना मंत्रिमंडल और कवष को अपना सेनापति बनाना चाहते हैं। लेकिन कवष यह पूरी व्यवस्था से सहमत न हो के पृथु का साथ छोड़ देता है।

पृथु ने दस्युओं को भगाया और चारों तरफ शांति जगायी। पृथु अर्चना के प्रेम पाश में बंध गया है। इसी वक्त चारों ओर अकाल के कारण हाहाकार मचाते हैं। मुनियों के लापरवाही का नारा लगाकर जनता पृथु के समक्ष प्रदर्शन करने आती है। ऋषियों का मंत्रिमंडल उसे बताता है कि सरस्वती के पार की दस्युओं की गुफा में उर्वी और कवष भूचंड़ी देवी का अनुष्ठान कर रहे हैं। वह अनुष्ठान के प्रभाव से पृथ्वी का रस सूख गया है। पृथु उन दोनों को मारने के लिए निकल जाते हैं। कवष और उर्वी मिलकर उसे समझाते हैं कि अकाल का कारण यह पूजा अनुष्ठान नहीं है उसका कारण है आर्यों की कृषि पद्धति। सभी मिलकर अकाल पर चर्चा करते हैं और आर्यों के कृषि पद्धति पर भी चर्चा करते हैं। पृथु के स्वप्न का अर्थ उर्वी बताती है और अकाल के निराकरण का मार्ग भी बताती है। खेतों को समतल बनाने से वर्षा का जल खेती में ठहरे गोधन द्वारा धृत, दुग्ध एवं उर्वरक बनाया जाए। सरस्वती की सूखती जलधारा को बनाये रखने के लिए

दशद्वती पर बाँध बांधा जाए और नहर द्वारा यमुना का जल खींचकर सरस्वती में मिलाया जाए। उर्वी, पृथु और कवष मिलकर सरस्वती पर बाँध बाँधने की योजना बनाता है। लेकिन मुनिगण यह योजना से प्रसन्न नहीं। इसलिए ये सभी मुनिगण एकत्र होकर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि ठीक उस समय जब हिमालय की तलहटी में वर्षा होती है, नदियों में बाढ़ आने को लगती है और बाँध को पूरा करने के लिए आवश्यक मजदूर भी नहीं मिलते। बाढ़ आकर अधूरे बांध को बहा ले जाती है। इस प्रकार शुक्राचार्य की शुक्रनीति और मुनियों की कुटनीति पृथु के सपने को ठुकरा देता है। पृथु मजदूरों के साथ बाँध निर्माण के लिए जानेवाला था तब सूत और मागध आकर बाँध टूट जाने की खबर देते हैं। साथ ही मजदूरों के साथ कवष और उर्वी भी बह जाता है यह समाचार भी देता है। इस घटना से मुनिगण प्रसन्न हो जाते हैं। लेकिन पृथु इस घटना को अपना पराजय समझता है। वह भी अंत में ऋर्षियों के प्रस्ताव के अनुसार चलने लगता है।

सन् 1974 में रामचरित मानस् पर आधारित लीला नाट्य रूपांतर 'दशरथनंदन' और 'रघुकुलरीति' दो नाटक लिखे गए हैं। यह उनके अंतिम दिनों के नाटक हैं। 'दशरथनंदन' नाटक रामलीला की प्राचीन नाट्य शैली का एक प्रयोगात्मक अनुभव है। रामचरित मानस के मूल रूप पर श्रद्धा और भक्ति सहित नाटककार ने मौलिकता का भी प्रतिपादन किया है। 'रघुकुलरीति' नाटक 'दशरथनंदन' नाटक की अगली कड़ी है। इसमें राम पिता की आज्ञा मानकर वन की ओर प्रस्थान करते हैं।

ड) दशरथनंदन –

दशरथनंदन के बारे में नाटककार ने अपनी भूमिका में यह उल्लेख किया है कि उनकी यह रचना न तो मानस-हृदय ग्रामीण के लिए है, न निष्ठावान नागरिक भक्तों के लिए, न साहित्यकारों के लिए, न अन्य विद्वान मनीषियों के लिए ही, अपितु यह रचना उन असंख्य युवा पीढ़ी के युवक-युवतियों के लिए है जो लोग मानस की भाषा से नितांत अपरिचित हैं। वर्ग संघर्ष आज समाज को धुन की तरह खाए जा रहा है, वर्ग-संघर्ष जिसने आम आदमी को कसैली अनुभूतियों से कटु बना दिया है, वर्ग संघर्ष को स्नेह, सद्भाव और शांति के साथ समाप्त करने का प्रयास है 'दशरथनंदन'। यहाँ रामकथा की प्राचीन नाट्य शैली का एक प्रयोग है। रामकथा सभी

वर्गों को जोड़नेवाला सेतु है। गाँव और शहर, उच्च वर्ग और निम्न वर्ग सब में रामकथा मानस और रामलीला के प्रति समान आकर्षण का भाव है। माथुरजी की यह रचना केवल परंपरा का चित्रण नहीं है वह रामचरित मानस की नाटकीय संभावनाओं का भी परिचायक है। आज के सामाजिक जीवन में आत्मीयता और आंतरिकता का सेतु निर्माण करना ऐसा ही रचनात्मक प्रयास है। दशरथनंदन खंड़ में राम-जन्म से लेकर राम विवाह तक की घटनाओं का क्रम लिया गया है।

इ) रघुकुलरीति -

'रघुकुलरीति' 'दशरथनंदन' की अगली कड़ी है। जिसमें राम के राज्याभिषेक की तैयारी, इसी तैयारी की पृष्ठभूमि में राम-वनवास का निर्णय और अंततः राम के वनगमन तक की घटनाएँ वर्णित हैं। राजा दशरथ द्वारा राम के राज्याभिषेक का निर्णय लिया जाता है। कैकेयी के मन में मंथरा दासी द्वेष जगाती है। कैकेयी दशरथ से वरदान माँगती है। राम के वनवास की राजाज्ञा स्वीकार करा लेती है। हर कोई इस निर्णय से असंतुष्ट है। राम पिता की आज्ञा और विधि के विधान को समझकर वनवास की राजाज्ञा स्वीकार कर लेते हैं और राजमहल छोड़कर वनवास के लिए चल पड़ते हैं। वे सब कुछ सह सकते हैं क्योंकि 'रघुकुल रीति' सदा चलि आई, ''प्राण जाये पर वचन न जाई'' राजा दशरथ, पुत्र वियोग से प्राण त्याग देते हैं। पर राम उनके वचन की रक्षा करते हैं। रामकथा के इसी भाग को रघुकुल रीति के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

2.2.4 अन्य साहित्य -

एकांकी, लघु नाटक और नाटक साहित्य के अतिरिक्त जगदीशचंद्र माथुरजी ने और कुछ साहित्य लिखा है- जिसका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है-

1. दस तस्वीरें (चरित लेख)
2. जिन्होने जीना जाना (चरित लेख)
3. बोलते क्षण (आत्मकथन)
4. प्राचीन भाषा नाटक संग्रह (संपादित)

'दस तस्वीरें' और 'जिन्होने जीना जाना' इन दो किताबों में माथुरजी ने अपने जीवन में किसी-न-किसी रूप में आए हुए व्यक्तियों को वाणी दी है, साथ ही साथ उन व्यक्तियों से प्रभावित अपने व्यक्तित्व को भी शब्दांकित किया है।

'दस तस्वीर' किताब में -

1. जीवन निर्माण अध्यापक - अमरनाथ झा
2. मतवाला कलाकार - शिशिर भादुड़ी
3. अफसर जो विलक्षण अपवाद था - पुरुषोत्तम मंगेश लाड
4. आस्थावान अंग्रेज शिक्षक - एफ्. सी. पीयर्स
5. विराट स्वर का विधायक - पन्नालाल घोष
6. व्यवहार कुशल और संवेदनशील पंडित - आनंद सदाशिव अल्टेकर
7. किशोर जीवन की मुस्कान ही जिसकी साधना थी - श्रीराम बाजपेयी
8. एक जन्मजात चक्रवर्ती - सच्चिदानंद सिंहा
9. द्रष्टा, कर्ता और कवि - सुधीद्रनाथ दत्त
10. मेरे पिता - लक्ष्मीनारायण माथुर

'जिन्होंने जीना जाना' किताब में भी इसी तरह कुछ व्यक्तियों को वाणी देने का प्रयत्न किया गया है वे हैं-

1. हिंदी साहित्य का चिरकुमार - रामकृष्ण बेनीपुरी
2. अमृत के स्त्रोत - पंडित जवाहरलाल नेहरू
3. सदा बहार साया - मामा वरेरकर
4. कुछे तरुण स्मृतियाँ - सुमित्रानंदन पंत
5. ग्रामीण हृदयों के सम्राट - राजेंद्र प्रसाद
6. प्रज्ञा के शिल्प, वीराट के दर्शक - वासुदेव शरण अग्रवाल
7. निराले आश्रयदाता - बनारसीदास चतुर्वेदी
8. तपस्वी साहित्यकार - शिवपूजन सहाय
9. पंडित और सूत्रधार - वेंकट राघवन
10. जो झंकार की पगडंड़ियाँ छोड़ गए हैं- राधिका रमण प्रसाद सिंह
11. भरतमुनि की परंपरा में ग्रामीण कलाकार - भिखारी ठाकुर
12. जादु की कली - देविका रानी

माथुर जी के पत्रिकाओं में बिखरे हुए लेख -

1. हिंदी रंगमंच और नाट्यकला का विकास - आलोचना, सितंबर, 1952.
2. वर्तमान रंगमंच : प्रवृत्तियाँ और संगठन - कल्पना, अक्तूबर, 1952
3. हिंदी नाट्य रचना की प्रगति का अंक वर्ण - राष्ट्रभारती, 1952
4. दि फारगोटन थियेटर आफ मिथिला - दि बिहार थियेटर न. 2 सितंबर, 1953
5. लोक रंगमंच का नवनिर्माण - नईधारा, 1953
6. नया रंगमंच : संगठन और शैलियाँ - आकाशवाणी प्रसारिका : जुलाई-सितंबर, 1957
7. नई पीढ़ी के लिए संगीत - संगीत नाटक, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, जून . 1960
8. हिंदी नाटक : अखिल भारतीय माध्यम के रूप में - संस्कृति पत्रिका
9. क्या वीररस और देशभक्तिपूर्ण नाट्य के लिए आज के युग में स्थान है ?
   साप्ताहिक हिंदुस्तान, 30 जनवरी, 1972
10. हिंदी नाटक : अखिल भारतीय माध्यम के रूप में - शारदीया, परिशिष्ट, 1975)
11. भारतीय लोकमंच का भविष्य - साप्ताहिक हिंदुस्तान, 14 अक्तूबर, 1976
12. निर्देशक और अभिनेताओं के लिए संकेत - परिशिष्ट, कोणार्क, 1979
13. वैशाली लीला - वैशाली, संघ वैशाली, बिहार, 1976
14. उदय की बेला में हिंदी रंगमंच और नाटक - परिशिष्ट कोणार्क 1979
15. हिंदी रंगमंच की प्रवृत्तियाँ और संभावनाएँ - अप्रकाशित निबंध

निष्कर्ष -

साहित्यकार का व्यक्तित्व परिवेश के अनुसार बनता है। उसी प्रकार उनका साहित्य भी परिवेश के अनुसार बनता है। जिस परिवेश में साहित्यकार पलते हैं, साहित्य कृतियों पर उस परिवेश का प्रभाव पड़ता है। जगदीशचंद्र माथुर के साहित्य देखने से हम को पता चलता है कि उस वक्त के परिवेश का माथुर के नाटकों पर प्रभाव है। दो विश्व युद्धों के बीच माथुर पले हैं। इसलिए उनके कृतियों पर युद्धों के प्रसंग दिखाई देते हैं। मुख्यतः 'कोणार्क', 'शारदीया' आदि नाटकों में।

जगदीशचंद्र माथुर के नाटक साहित्य सीमित हैं। उनके कृतित्व में बहुत कुछ ऐसा है जो अलग से उनकी पहचान करा देता है। वे मूलतः सामाजिक जीवन के उदारचेता द्रष्टा होने पर भी व्यक्तिवादी चेतना के सृष्टा हैं। माथुर का कृतित्व अनुभूति की तीव्रता और उसकी प्रामाणिकता का अपूर्व आभास देता है। यदि इसका विश्लेषण करे तो भाव-प्रवणता, रोमान, प्रकृति-प्रेम, सौंदर्य-पिपासा, करुणा और कल्पनाशीलता उनके व्यक्तित्व की कुंजी प्रतीत होती है। उनमें प्रकृति के प्रति एक अपूर्व स्नेह मिलता है। साथ-ही-साथ सरल निश्चल प्रणय की उदात्त अनुभूति के भी दर्शन होते हैं। उन्होने सामाजिक समस्या को भी रागात्मकता अनुभूति के धरातल पर अनरंजित करते हैं। अपने साहित्य में सामान्य और मध्य वर्ग के समस्याग्रस्त पात्रों की प्रतिष्ठा उन्होंने की है। इसीलिए उनके कृतित्व में भोगे हुए यथार्थ का सतत आभास मिलता है।

संदर्भ सूची

1. जगदीशचंद्र माथुर - बोलते क्षण, पृ. 21
2. गोविंद चातक - नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 10
3. जगदीशचंद्र माथुर - दस तस्वीरें, पृ.141
4. मीनाक्षी काला - प्रयोगधर्मी नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 23
5. डॉ. रमेश गौतम - मिथक और स्वतंत्र्योत्तर हिंदी नाटक, पृ. 35
6. जगदीशचंद्र माथुर - जिन्होने जीना सीखा, पृ. 42
7. माथुर- बोलते क्षण, पृ. 183
8. माथुर - जिन्होने जीना सीखा, पृ. 110
9. माथुर - दस तस्वीरें, पृ. 40
10. माथुर - दस तस्वीरें, पृ. 45
11. मीनाक्षी कला - प्रयोगधर्मी नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 28